पढ़ने की प्रक्रिया का समाज-सांस्कृतिक और आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य

रजनी*

पढ़ना दुनिया में सबसे स्वाभाविक प्रक्रिया है। एक बच्चा जिस तरह अपने आस-पास के परिवेश की समझ बनाता है, ठीक उसी प्रकार वह लिखित प्रिंट की भी समझ बनाता है। यह उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि जीवन के अन्य बोधात्मक कार्य। पढ़ने की पारंपरिक विधि में 'बॉटम-उप पद्धति' का प्रचलन था, जिसमें पढ़ना सीखने को एक खास तरह के क्रम में देखा जाता था। इसमें सर्वप्रथम वर्ण-ध्वनि, अक्षर, शब्द, वाक्य व अर्थ आदि का क्रम ही प्रचलित रहा। इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार पढ़ने-लिखने के लिए निर्देशित निहितार्थ केवल 'डिकोडिंग' में पारंगत हो जाना है। जबकि पढ़ने का समाज-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य यह कहता है कि पढ़ना एक प्रकार की यात्रा है जिसमें पाठक अपने जीवन के संपूर्ण अनुभवों को पाठ से जोड़कर उस लिखित पाठ का अर्थ निर्माण करते हैं। इस लेख में पढ़ने की प्रक्रिया के समाज-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को पिछले दशकों में हुए शोध अध्ययनों एवं सैद्धांतिकी, जैसे — फ्रैंक स्मिथ (अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ रीडिंग), गुड मैन (रीडिंग इज़ ए साइको-लिंगुस्टिक गेम), एंडरसन का स्कीमा सिद्धांत, मेटाकॉग्निशन सिद्धांत, रोजनब्लेट की 'ट्रांजिक्शन थ्योरी ऑफ़ रीडिंग' तथा पढ़ने के आलोचनात्मक उपागम के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

भारतीय कक्षाओं में आमतौर पर पढ़ना सीखने और सिखाने को टुकड़ों में बाँटकर देखा जाता है। कक्षाओं में शिक्षिकाओं और शिक्षकों का पूरा ध्यान विद्यार्थियों को वर्णमाला, मात्राएँ, बारहखड़ी रटाने-दोहराने व सुलेख-इमला लिखवाने के अभ्यासों पर ही केंद्रित रहता है। जबकि पढ़ने की प्रक्रिया को लेकर पिछले दशकों में बहुत-से शोधार्थियों ने काम किया है और इस बात पर सहमति जताई है कि पढ़ना लिखी हुई सामग्री से अर्थ निर्माण की प्रक्रिया है (रीडिंग फ़ॉर मीनिंग; 2008)। यह एक ऐसी प्रकिया है जिसमें कई तरह की परस्पर संबंधित जानकारियों की आवश्यकता होती है। पढ़ना केवल लिखित शब्दों व चिह्नों को डिकोड करना नहीं है, बल्कि उससे कहीं ज़्यादा व्यापक है। जाग्रति व नव जागरण के उपरांत ज्ञान के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए जहाँ ज्ञान को प्रत्यक्षवादी दायरों से निकाल कर सामाजिक-सांस्कृतिक व आलोचनात्मक संदर्भों में समझने का प्रयास किया गया। पढ़ने की प्रक्रिया के विशेष संदर्भ में यह परिवर्तन किस तरह की समझ को प्रस्तुत करते हैं? यह जानना अपने आप में एक

**शोधार्थी*, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली – 110007

महत्वपूर्ण विषय है। पढ़ने की प्रक्रिया को व्यापक स्तर पर समझने से पूर्व यह देखना भी आवश्यक है कि 'पढ़ने' को लेकर एक सामान्य समझ क्या रही है? पारंपरिक रूप से पढ़ने को केवल 'डिकोडिंग' करने की संकुचित प्रक्रिया की तरह समझा जाता रहा है। इस प्रक्रिया का मुख्य ध्येय केवल मौखिक और लिखित कुशलता को प्राप्त कर लेना है। पढ़ने की पारंपरिक विधि में 'बॉटम-उप' पद्धति का प्रचलन था। इसमें पढ़ने को सीखने के एक खास तरह के क्रम में देखा जाता था तथा इसमें सर्वप्रथम वर्ण-ध्वनि, अक्षर, शब्द, वाक्य व अर्थ आदि का क्रम ही प्रचलित रहा है। इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार पढ़ने-लिखने के लिए निर्देशित निहितार्थ केवल 'डिकोडिंग' में पारंगत हो जाना है। जिसमें अक्षरों के क्रम और ध्वनियों से अक्षरों के संबंध को पहचान कर उनका उच्चारण कर लेना ही पढ़ना सीख लेना है। यह दृष्टिकोण पढ़ने के प्रकार्यात्मक पहलुओं को नकार कर उसके औपचारिक पहलुओं पर ही ज़ोर देता है।

जबकि पढ़ने का 'समाज-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य' यह कहता है कि पढ़ना एक प्रकार की यात्रा है जिसमें पाठक अपने जीवन के संपूर्ण अनुभवों को पाठ से जोड़कर उस लिखित पाठ का अर्थ निर्माण करते हैं। पढ़ने का यह विचार अर्थ को महत्वपूर्ण मानता है तथा विभाजित प्रक्रिया द्वारा पढ़ना सीखने के स्थान पर लिखित पाठ के संदर्भगत अर्थ को पढ़ने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण मानता है। प्रस्तुत लेख में पढ़ने की प्रक्रिया के समाज-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को पिछले दशकों में हुए शोध व सैद्धांतिकी, जैसे — फ्रैंक स्मिथ (अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ रीडिंग), गुड मैन (रीडिंग इज़ ए साइको-लिंगुस्टिक गेम), एंडरसन का 'स्कीमा सिद्धांत', 'मेटाकॉग्निशन सिद्धांत', रोजनब्लेट की 'ट्रांज़िक्शन थ्योरी ऑफ़ रीडिंग' व पढ़ने के आलोचनात्मक उपागम के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

'पढ़ना' क्या है?

"पढ़ना दुनिया में सबसे स्वाभाविक प्रक्रिया है। बच्चे की दुनिया में कुछ भी अस्वाभाविक नहीं होता। दुनिया की प्रत्येक वस्तु प्राकृतिक है। छपी हुई सामग्री दुनिया का ही एक अन्य पहलू है। बच्चे जिस वस्तु के संपर्क में आते हैं उससे दुनिया की समझ बनाते हैं। समझने की यह प्रक्रिया बहुत स्वाभाविक है, इसी प्रकार पढ़ना भी एक प्रकार की स्वाभाविक गतिविधि है। पढ़ना उतना ही स्वाभाविक है जैसे कि किसी व्यक्ति के चेहरे के भावों को समझना। इस प्रकार पढ़ना सीखना किसी तरह का रॉकेट साइंस नहीं है। एक बच्चा जिस तरह अपने आस-पास के परिवेश की समझ बनाता है, ठीक उसी प्रकार वह लिखित प्रिंट की भी समझ बनाता है। यह उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि जीवन के अन्य बोधात्मक कार्य" (स्मिथ,1971)।

पढ़ना केवल लिखित सामग्री को 'डिकोड' करना नहीं है, बल्कि वह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिसमें हम लगातार अर्थ का निर्माण कर रहे होते हैं। जब हम किसी घटना या टेक्स्ट से अर्थ निर्माण कर रहे होते हैं, तब हम घटना की हर बारीकी पर ध्यान देने की बजाय उसकी समग्रता को पकड़ने की कोशिश करते हैं और इसी समग्रता के आधार पर उसकी व्याख्या करते हैं।

"हर प्रकार का सीखना और समझना किसी घटना को उसके संदर्भ में व्याख्यायित करना है। किसी भी लिखित सामग्री को कई तरह से पढ़ा जा सकता है

और हर तरह से पढ़ना समग्रता में उसकी व्याख्या करना है। उससे अर्थ निकालना है। जैसे किसी कार की पहचान करते हुए आप उसके टायर और हैड लाइट की चिंता नहीं करते, ठीक वैसे ही पढ़ते समय हमें विशिष्ट अक्षरों यहाँ तक की शब्दों की भी चिंता नहीं रहती"(स्मिथ, 1971)।

सार्थक रूप से 'पढ़ने' का अर्थ है लिखित सामग्री को समझना

"हमारे पास जानकारी बहुत-सी कोटियों में होती है जिसे हम एक-दूसरे से जोड़कर व्यवस्थित करते हैं। यही व्यवस्था हमारा ज्ञान बनती है। यह 'ज्ञान' अब तक के हमारे व्यक्तिगत अनुभवों के सिद्धांत पर आधारित होता है, जिसकी सहायता से हम दुनिया को समझते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं।" व्यक्तिगत अनुभव पढ़े गए पाठ की व्याख्या करने व समझने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जहाँ पढ़ना वाचन करने से भिन्न हो जाता है। अब यह समझा जाए कि समझना क्या है? "समझ किन्हीं कौशलों व प्रक्रियाओं की तुलना में एक अवस्था है।" जिसमें हम नये ज्ञान को पुराने ज्ञान से जोड़ते हुए उसका अर्थ निर्मित कर नये ज्ञान को ग्रहण करते हैं। किसी नये ज्ञान को अपने स्कीमा से जोड़ पाना ही अधिगम है। हम पढ़ना भी ऐसे ही सीखते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

पढ़ना — एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया

बच्चे जब पढ़ने की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं, तब वे केवल शब्दों को तोड़कर नहीं पढ़ते, बल्कि वे लिखित सामग्री को व्यापक संदर्भों से संबंद्ध करके उससे अर्थ निर्मित कर रहे होते हैं और लिखित सामग्री की संदर्भ विशेष में व्याख्या कर रहे होते हैं। अर्थ निर्माण की इस प्रक्रिया में केवल लिखित सामग्री ही शामिल नहीं होती, बल्कि उसके व लेखक के विचार के साथ शामिल होता है पाठक व उसका सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिवेश। एक पाठक जब लिखित सामग्री के संपर्क में आता है तो वह अपने तमाम अनुभवों को एकत्रित कर उस लिखित सामग्री से अर्थ निर्मित करता है।

पढ़ना — एक संयोजित प्रक्रिया

पढ़ना एक संयोजित प्रक्रिया है, जिसमें पाठ, संदर्भ, अनुभव, पाठक का परिवेश व अनुमान शामिल होते हैं। किसी भी पाठ को कुशलता से पढ़ने व समझने में ये सभी पक्ष महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें से अनेक पक्षों पर अब तक के आलेख में प्रकाश डाला जा चुका है। लेकिन अनुमान की चर्चा होनी बाकी है। अनुमान लगाना पढ़ने को प्रवाहमय व बोधगम्य बनाता है। पढ़ने की प्रक्रिया में अंदाज़ा लगाना अपने आप में महत्वपूर्ण है। अनुमान की आवश्यकता पर बात करते हुए स्मिथ सवाल पूछते हैं कि हमें अनुमान क्यों लगाना चाहिए? क्या हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि दुनिया में कभी भी, कुछ भी हो सकता है और इस तरह हम खुद को तमाम तरह की संभावनाओं से मुक्त कर लें। नहीं, हम ऐसा नहीं करते, क्योंकि इसकी तीन मुख्य वजह हैं, हम जिस दुनिया में रह रहे हैं, वहाँ हमारी स्थितियाँ बदलती रहती हैं। जो हो रहा है, उसकी बजाय हम निकट भविष्य में क्या हो सकता, उसके लिए ज़्यादा चिंतित रहते हैं।

हमें विभिन्न विकल्पों में से किसी एक उचित विकल्प का चयन करना होता है, इसलिए हम अंदाज़ लगाते हैं ताकि किसी संभावित उचित विकल्प को चुना जा सके। ऐसा न करने पर हम संभावनाओं से ही घिरे रह जाएँगे। अनुमान, पाठ में आने वाली अस्पष्टताओं को

कम करता है और पाठक को पाठ की समझ के अनेक विकल्पों में से समय विशेष पर किसी एक विकल्प को चुनने मदद करता है। अनुमान लगाना पढ़ने का केंद्र है। हमारे द्वारा देखी गई जगह, नाटक, वस्तुएँ, सुनी गई कहानियाँ और बातें, पढ़ी गई किताबें और विमर्श किसी भी लिखित सामग्री को समझने व पढ़ने का आनंद लेने में हमारी मदद करते हैं।

पढ़ने के संदर्भ में फ्रैंक स्मिथ के ये विचार पढ़ने के समाज-सांस्कृतिक व्यवहार को चित्रित करते हैं। ये विचार पढ़ने को एक प्रकार की संयोजित प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जहाँ पाठक लिखित पाठ को समझने के लिए अपने अनुभव व अनुमानों का प्रयोग करते हैं। यह सभी बातें स्पष्ट करती हैं कि पढ़ना कभी भी एक रेखीय प्रक्रिया नहीं है। पढ़ने की प्रक्रिया में समाज-संस्कृति से प्राप्त अनुभव लगातार शामिल होते रहते हैं। पाठ साहित्य व संस्कृति के संपर्क में आने से समृद्ध होते हैं। इसलिए आवश्यक है कि शुरुआती पाठकों के लिए एक ऐसा माहौल तैयार किया जाए जिसमें पढ़ने के लिए बहुत-सी किताबें और अन्य पठन-सामग्री प्रचूर मात्रा में हो।

पढ़ना — एक मनोसामाजिक प्रक्रिया

पढ़ने को लेकर गुड मैन का मानना है कि पढ़ना केवल शब्दों की डिकोडिंग नहीं है। सामान्यत: पढ़ने को लेकर यह माना जाता रहा है कि पढ़ना एक 'कॉमन सेंस' है जिसमें शिक्षण और सीखना ही शामिल है। जबकि पढ़ने की प्रक्रिया एक व्यापक परिघटना है। पढ़ने को एक विधिपूर्ण प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जिसमें एकदम सही विवरण में दिए गए वर्ण, शब्द, उच्चारण और भाषा की व्यापक इकाई के पैटर्न्स की पहचान शामिल है। ध्वनिक केंद्रित उपागम ध्वनि पर, एक रूपिम केंद्रित उपागम रूपिम पर बल देते हैं। इस विधिपूर्ण विचार के अनुसार, देखकर शब्दों को पहचानना, उनको नाम देना भर ही पढ़ना है। इस विधि में पढ़ने के दौरान लगातार चलने वाली एक वैचारिक प्रक्रिया को ध्यान नहीं दिया जाता। पढ़ना सीखने-सिखाने को लेकर यह एक प्रकार की भ्रांति है। इस भ्रांति की जगह यदि व्यापक रूप से पढ़ने की प्रक्रिया को समझें तो पाएँगे कि पढ़ना एक प्रकार की चयनित प्रक्रिया है, जिसमें दृश्य सूचना के साथ भाषा का एक आंशिक अनुमान व पाठक की अपेक्षाएँ शामिल होती हैं। सरल शब्दों में कहें तो पढ़ना एक प्रकार का 'गेसिंग गेम'(Guessing Game) है। इसमें भाषा एवं विचार का अंत:संपर्क शामिल होता है। एक प्रकार का कुशल पठन केवल संक्षिप्त प्रत्यक्ष तत्वों की पहचान पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि इस मार्ग में निहित कुछ महत्वपूर्ण संकेत के चयन का कौशल भी शामिल होता है।

गुड मैन ने अपना 'साइकोलिंग्विस्टिक गेसिंग गेम' मॉडल प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है—

- पाठक पूरे पृष्ठ को लाइन के साथ-साथ प्रिंट को लेफ़्ट और राइट व ऊपर से नीचे की ओर पढ़ते हुए आता/ती है।
- उसकी आँखों का फ़ोकस प्रिंट के किसी एक भाग पर ज़्यादा केंद्रित होता है, जबकि कुछ हिस्से कम फ़ोकस और 'पेरिफ़ैरल' हो जाते हैं।
- पाठक पाठ से अपने संज्ञानात्मक स्तर के आधार पर व पूर्व ज्ञान के आधार पर ग्राफ़िक से कहीं संकेत को चयन कर इस प्रक्रिया में आगे बढ़ता/बढ़ती है।

- इन संकेतकों के आधार कुछ इमेज बनती है जो या तो उसने कभी देखी होती है या फिर वह इस तरह की ही इमेज को पाठ में देखना चाहता/ती है।
- अब वह चयन किए गए ग्राफ़िक के लिए वाक्य और अर्थ को खोजता है जिसके लिए वह और ग्राफ़िक संकेत का इस्तेमाल करता है तथा सोची गई इमेज को इन सभी बिंदुओं से अर्थ देने की कोशिश करता/करती है।
- इस तरह एक अनिश्चित अर्थ 'शोर्ट टर्म मेमोरी' में चला जाता है।
- अगर कोई अनुमान नहीं मिलता तो वह दोबारा से दृश्य कोड को चुनता है और उन्हें डिकोड करता है।
- यदि डिकोडिंग इच्छा अनुसार हो जाती है तो वह उसका अर्थ विज्ञान से व व्याकरण से उचित व स्पष्ट कारण ढूँढ़ता/ती है।
- अगर चयन किया गया विकल्प अर्थ विज्ञान और वाक्य विज्ञान के अनुसार उचित नहीं बैठता तब फिर से पूरे प्रिंट को लेफ़्ट से राइट ऊपर से नीचे दोबारा से स्कैन किया जाता है और पाठ से कुछ संकेत ढूँढें जाते हैं, जैसे ही पाठक को वह बिंदु मिल जाता है जो बिना किसी बाधा के अर्थ को पूरा करता है और पूर्व ज्ञान से जुड़ जाता है, तो डिकोडिंग की यह प्रक्रिया आगे बढ़ जाती है।
- इस तरह यह चक्रीय प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है।

गुडमैन का 'रीडिंग मॉडल' पढ़ने के चरणों की एक वैज्ञानिक और संगठित व्यवस्था को प्रस्तुत करता है। इस मॉडल के अनुसार पढ़ना केवल डिकोडिंग करने जैसी यांत्रिक प्रक्रिया मात्र नहीं है, बल्कि वह एक प्रकार का अनुमान लगाने वाला गेम है, जहाँ लगातार प्रत्येक स्तर पर विश्लेषण की प्रक्रिया चलती रहती है। इस बात को समझाने के लिए ब्रेवन ने पढ़ने के 'मेटाकॉग्निशन सिद्धांत' की संज्ञा दी है।

पढ़ने की प्रक्रिया व 'मेटाकॉग्निशन'

'मेटाकॉग्निशन सिद्धांत' के अनुसार, पढ़ने के दौरान लगातार अर्थबोध के लिए सक्रिय मॉनिटरिंग करना बहुत ज़रूरी है। जब भी किसी पाठ को पढ़ा जाता है तो उसमें अनुमान लगाना, चेक करना, मॉनिटरिंग करना, वास्तविक स्थितियों में पढ़े गए पाठ की जाँच करना आदि कुशल रूप में सोचने, पढ़ने और समझने के आधारभूत यंत्र हैं। ये सभी यंत्र 'मेटाकॉग्निशन' कौशल कहलाते हैं। पढ़ना सीखने और सिखाने में 'मेटाकॉग्निशन' कौशलों को विकसित करना बहुत आवश्यक है। 'मेटाकॉग्निशन' का अर्थ है अपनी समझ को समझना। स्वयं की समझ को समझने के लिए सचेत रूप से मॉनिटरिंग बहुत आवश्यक है। 'मेटाकॉग्निशन सिद्धांत' इन्ही मॉनिटरिंग कौशलों के प्रयोग को पढ़ने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण मानता है। इस सिद्धांत के अनुसार पढ़ने को समझ बना पाना व पाठ की समझ प्राप्त करना ही पढ़ने की प्रक्रिया है। इसलिए पढ़ने के दौरान अर्थबोध को मज़बूत बनाने के लिए कुछ 'मेटाकॉग्निशन' कौशलों का प्रयोग बहुत आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं —

- पढ़ने के उद्देश्यों का स्पष्ट होना।
- पढ़ने को जीवन की वास्तविक स्थितियों से जोड़कर देखना।
- पाठ के महत्वपूर्ण पहलुओं की पहचान करना।
- अपनी समझ को लगातार मॉनिटर करना।
- निर्धारित उद्देश्य तक पहुँचने के लिए लगातार विवेचना करते रहना।

- समझ न आने की स्थिति में यह पहचान कर पाना की कौन-से कारणों की वजह से समझ नहीं आ रहा है व सही निर्णय ले पाना।
- उन सभी स्वैच्छिक गतिविधियों से निकल कर पढ़ने को सार्थक बना पाना जो उसे प्रभावित करती हैं।

पढ़ने का 'मेटाकॉग्निशन सिद्धांत' भी पढ़ने की प्रक्रिया में व्याप्त मनोसामाजिक पहलुओं की विवेचना करता है। यह सिद्धांत बताता है कि एक कुशल पाठक बनने के लिए अपने तमाम अनुभवों पर सोचना पढ़ता है। पढ़ने के लिए लगातार अपनी समझ को मॉनिटर करना बोध को बढ़ाता है। मॉनिटर करने की इस पूरी प्रक्रिया में 'स्कीमा' महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पढ़ने के संदर्भ में 'स्कीमा सिद्धांत' यह बताता है कि पढ़ना केवल लिखे हुए वर्ण, अक्षरों व वाक्यों को डिकोड कर लेना नहीं है।

जैसा कि पढ़ने की 'बॉटम-अप पद्धति' बात करती है, जिसमें पढ़ने को एक यांत्रिक प्रक्रिया की तरह देखा जाता है। वहीं, 'स्कीमा थ्योरी' के अनुसार लिखित पाठ को अपने सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभवों के ढाँचे में व्याप्त ज्ञान से जोड़कर उसका अर्थ निर्माण करना है। 'स्कीमा' ज्ञान का संगठन है। यह संगठन लिखित पाठ के अर्थबोध में निर्णायक भूमिका निभाता है। जब हम किसी भी नए पाठ को पढ़ते हैं तो उसे अपने अनुभवों से अर्थ देते हैं। आइए, इस बात को एक उदाहरण की मदद से समझते हैं। "सरकार ने वातानुकूलित बस यात्रा शुल्क में 50 प्रतिशत की वृद्धि की।" मान लीजिए किसी स्थानीय समाचार-पत्र में उपर्युक्त खबर छपती है। इस खबर को पढ़ने और इसका वाचन (डिकोडिंग) करने में क्या अंतर होगा? वाचन यानि उच्चारण, बलाघात आदि की स्पष्टता और उपयुक्तता। इस खबर को पढ़ने का मतलब है इस खबर की अलग-अलग छवियों को अनावृत करना। इस खबर में सरकार का बसों में यात्रा करने वाले व्यक्तियों, सड़क पर चलने वालों, महिलाओं, बच्चों, विद्यार्थियों व गरीब परिवारों आदि के लिए क्या-क्या संदेश हैं? उन संदेशों को तलाशना और उनके बारे में राय कायम करना, पढ़ना है। इस खबर की अलग-अलग छवियों का अनावरण तभी संभव है जब इससे संबंधित ज़रूरी ज्ञान का 'स्कीमा' हमारे पास हो और इस ज़रूरी ज्ञान की मदद से इस खबर में समाए अलग-अलग संदेशों को तलाश कर राय बना पाएँ।

हमारे पास जानकारी बहुत-सी कोटियों में होती है, जिसे हम एक-दूसरे से जोड़कर व्यवस्थित करते हैं। यही व्यवस्था हमारा ज्ञान बनती है। यह 'ज्ञान' अब तक के हमारे व्यक्तिगत अनुभवों के सिद्धांत पर आधारित होता है, जिसकी सहायता से हम दुनिया को समझते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं। व्यक्तिगत अनुभवों का यह सिद्धांत पढ़े गए पाठ की व्याख्या करने व समझने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जहाँ पढ़ना वाचन करने से भिन्न हो जाता है एंडरसन ने अपने एक प्रयोग में (जिसमें अमेरिकन बच्चे भारतीय हिन्दू विवाह को अपनी संस्कृति के अनुसार समझ कर व्याख्या करते हैं।) यह सिद्ध किया कि किस प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभव घटनाओं को समझने में मदद करते हैं व पूर्व ज्ञान के आधार नए ज्ञान को अर्थ देने में मदद करते हैं। अर्थ निर्माण की इस प्रक्रिया में यदि किसी भी तरह के लिखित पाठ व साहित्य को लें तो पाएँगे कि पाठ को पढ़ते समय प्रत्येक पाठक

अपने प्रतिउत्तरों (रिस्पोंसिज़) को तय करते हैं जिसमें उनके जीवन के अनुभव महत्वपूर्ण होते हैं।

रोजनब्लेट (1946) ने साहित्य पाठ को पढ़ने के दौरान पाठक द्वारा तय किए गए प्रतिउत्तरों के लिए वास्तविक जीवन अनुभवों को महत्वपूर्ण माना है। पढ़ने को रोजनब्लेट पाठक व पाठ के बीच हुए अर्थ के 'हस्तांतरण' की तरह देखती हैं, जिसमें संस्कृति से प्राप्त अनुभव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह सिद्धांत पढ़ाने के भावुक पहलुओं को किसी भी पाठ से जुड़ने के लिए महत्वपूर्ण मानता है। इसके अनुसार पढ़ना केवल पाठ से सूचनाएँ निकालना नहीं है, बल्कि इसका मौलिक आधार 'लिविंग थ्रू एक्सपीरियंस' को पढ़े हुए से जोड़ना है। लिखित पाठ को अर्थ देने के लिए पाठक का पाठ से जुड़ना बहुत ज़रूरी है और पाठक, पाठ से तभी जुड़ता/ जुड़ती है जब वह अपने जीवन के अनुभवों को पाठ से जोड़ पाए। किसी पाठ को पढ़ते समय पाठक अपने अनुभवों के आधार पर उस पाठ से अर्थ निर्मित करता/करती है और अपने प्रतिउत्तरों को निर्मित करता/करती है। प्रतिउत्तरों (रिस्पोंसिज़) के केंद्र में अनुभव समाहित होते हैं। पाठकों की पृष्ठभूमियों की भिन्नता के चलते प्रतिउत्तरों में भी भिन्नता होती है। पढ़ने का यह सिद्धांत पाठ से अर्थ के निर्माण में प्रमुख रूप से पाठक के सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभवों को महत्व देता है, जहाँ केवल पाठ ही प्रमुख नहीं है, बल्कि पाठक और उसके जीवन से जुड़े अपने अनुभव भी महत्वपूर्ण हैं।

पढ़ने का आलोचनात्मक सिद्धांत

पढ़ने का यह विचार बताता है कि पढ़ना एक सांस्कृतिक गतिविधि है, इसलिए पढ़ने को विमर्श के दायरे में लाना आवश्यक है। आलोचनात्मक उपागम तमाम तरह की शैक्षिक गतिविधि को शक्ति, सत्ता व सामाजिक पुनरुत्पादन के संदर्भ में देखता है। इसलिए यह उपागम पढ़ने के दौरान सतही चीज़ों के साथ-साथ ज्ञान, शक्ति व वर्चस्व के संबंध को उजागर करने पर बल देता है। पढ़ने का यह सिद्धांत वर्चस्व की संस्कृति से ज्ञान की वैधता की बात करता है। यह विचार मानता है कि प्राय: स्कूलिंग द्वारा भाषा शिक्षण के अंतर्गत विशेषकर पढ़ने व समझने के दौरान शक्ति संबंधों को पुख्ता किया जाता है और वर्चस्व को बनाए रखने के सतत प्रयास किए जाते हैं। जबकि, पढ़ने के दौरान समाज की बुनावट में असमानता के ढाँचों की जाँच करने, शक्ति संबंधों को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक संदर्भों में समझाने का प्रयास भी किया जा सकता है। इस बात को पिछले पृष्ठ पर दिए गए उद्धरण 'सरकार ने वातानुकूलित बसों के शुल्क में 50 प्रतिशत वृद्धि की', आलोचनात्मक संदर्भ में समझने के लिए आवश्यक है कि पहले इस बात पर गौर किया जाए कि सरकार के इस फ़ैसले से किस-किस वर्ग के लोग प्रभावित होंगे और किस तरह? इस निर्णय का मज़दूर वर्ग, छात्र-छात्राओं व संपन्न वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ेगा। संभवतः यह निर्णय एक खास वर्ग को इस सुविधा से वंचित कर दे, ऐसे में समाज में असमान शक्ति संबंधों को मज़बूत होने और वर्ग भेद को ज्यों का त्यों रखने में मदद मिले। इस प्रकार आलोचनात्मक सिद्धांत पढ़ने के दौरान पढ़ी गई सामग्री का शक्ति संबंधों के स्तर पर विश्लेषण की क्षमता को विकसित करने पर बल देता है।

निष्कर्ष

पढ़ने का समाज-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पढ़ने को मात्र चिह्नों के वाचन तक सीमित न रखकर उसे जीवन व व्यक्ति के निजी अनुभवों से जोड़ते हुए उसके मनोवैज्ञानिक पक्षों को उजागर करता है। जबकि आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य जीवन व अनुभवों को सार्थक मानते हुए लिखित पाठ के अर्थ को राजनैतिक व आर्थिक संदर्भों में फैलाने की बात करता है।

संदर्भ

इगाल्टन, टेरी. 1996. *लिटररी थ्योरी — एन इंट्रोडक्शन*. ब्लॅकवेल पब्लिकेशन, ऑक्सफ़ोर्ड.

कुमार, कृष्ण. 2004. *शैक्षिक ज्ञान का वर्चस्व. राजकमल प्रकाशन*, दिल्ली.

गिरू, हेनरी. 1994. साक्षरता, विचारधारा और विद्यालय शिक्षा. *परिप्रेक्ष्य*. न्यूपा, नयी दिल्ली.

——. 2014. *संस्कृतिकर्मी और शिक्षा की राजनीति*. ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली.

फ्रेरे, पाउलो. 2010. *उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र*. ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

——. 2008. *रीडिंग फ़ॉर मीनिंग*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

रोजनब्लेट, लुईस. 2005. *मेकिंग मीनिंग विद टेक्स्ट*. हीनीमन पॉर्ट्समाउथ, एनएच.

सिंह, बिरेंदर रावत. 2016. *भाषा शिक्षण की आलोचनात्मक* दृष्टि. यश प्रकाशन, दिल्ली.

सिन्हा, शोभा. 2012. *रीडिंग विदाउट मीनिंग — द डिलेम्मा ऑफ़ इंडियन क्लासरूम. लैंगवेज एंड लैंगवेज टीचिंग*. ए.पी.यू. बेंगलुरू.

स्कार्सी, जे. टिमथी. 1993. *इमेज, आइडियोलॉजी एंड इनिक्वालिटी*. सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

स्मिथ, फ्रैंक. 1971. *अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ रीडिंग*. एल.ई.ए., न्यू जर्सी.

शिक्षक शिक्षा में हिंदी भाषा की स्थिति, चुनौतियाँ एवं सुझाव

निर्मला शर्मा*

भाषा एक तरह से सामाजिक संस्था है जो किसी देश को एकता के सूत्र में बाँधने का काम करती है। हिंदी भाषा हमारे देश की राजभाषा है। हिंदी भाषा के प्रति हमारी उदासीनता इसके विकास और व्यवहार को अवरुद्ध करती है। इसलिए हमें अपनी भाषा के प्रति सकारात्मक और व्यापक दृष्टिकोण अपनाना ज़रूरी है। विद्यार्थी-शिक्षकों को भाषा शिक्षण हेतु आवश्यक ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों में भाषा क्या है? भाषा को सीखने के क्या उद्देश्य हैं? भाषा से किस प्रकार हमारी सांस्कृतिक और सामाजिक एकता बढ़ती है? आदि सभी प्रश्नों के उत्तर एवं सीखने-सिखाने के अवसर शिक्षक शिक्षा प्राप्त करने के दौरान होते हैं। वर्तमान में शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रमों में भाषा शिक्षण के साथ-साथ एक विषय के रूप में 'पाठ्यचर्या के सभी विषयों में भाषा' पढ़ाया जाता है। इस विषय के माध्यम से विद्यार्थी-शिक्षकों को भाषा के विविध पहलू एवं उसकी सहायता से विभिन्न विषयों की विषय-वस्तु को सीखने-सिखाने के तौर-तरीकों का अवसर मिलता है। इस लेख में शिक्षक शिक्षा में हिंदी भाषा की वास्तविक स्थिति एवं उसे मज़बूत बनाने के सुझाव दिए गए हैं।

भाषा हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा के द्वारा हम अपने विचारों, भावनाओं, तथ्यों और सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा किसी भी राष्ट्र की संस्कृति, परंपरा, जीवन मूल्यों एवं सांस्कृतिक गौरव की संवाहक भी होती है, जो माँ की लोरी के साथ बालक के मन-मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालती है। अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा में शिक्षा ग्रहण करने वाला बालक जीवन के हर क्षेत्र में तेज़ी से आगे बढ़ता है। भाषा विचारों की वाहिका होती है, ज्ञान की नहीं। सच्चा ज्ञान तो मातृभाषा ही दे सकती है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में भी यह प्रावधान है कि जहाँ तक हो सके शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। क्योंकि बालक को अपने विचार मातृभाषा में प्रकट करने में सहायता होती है। त्रिभाषा सूत्र को पुनःलागू किया जाना चाहिए ताकि बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद के माहौल को बढ़ाया जा सके। किंतु पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में हम अपनी भाषा की उपेक्षा कर केवल अंग्रेज़ी के पीछे दौड़ते जा रहे हैं।

जब से शिक्षा का व्यावसायीकरण हुआ है, तब से सामान्यतः हिंदी ही नहीं अन्य भारतीय भाषाएँ भी कमज़ोर होती जा रही हैं। स्कूल हो, कॉलेज हो

**शोधार्थी*, 111, रूप नगर , हिरण मागरी, उदयपुर, राजस्थान – 313002

या फिर शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, सब जगह हिंदी की उपेक्षा की जाती है। आजकल हर जगह सैकड़ों पब्लिक स्कूल धड़ल्ले से खुलते जा रहे हैं। शिक्षा में सुधार के लिए बनाए गए सभी शिक्षा आयोगों ने प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर प्रायः भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया, किंतु आज तक ऐसा नहीं हो पाया है। जब इन विद्यालयों से पढ़कर विद्यार्थी शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय में प्रशिक्षण लेने के लिए प्रवेश करते हैं तो कुछ विद्यार्थियों की हिंदी भाषा पर पकड़ बहुत कमज़ोर होती है। हिंदी का सही ज्ञान नहीं होने से ये विद्यार्थी एक सफल शिक्षक बनने से कोसों दूर हो जाते हैं। इंटर्नशिप के दौरान इन सभी विद्यार्थी-शिक्षकों को सरकारी विद्यालयों में भेजा जाता है, जहाँ उन्हें भाषा से संबंधित अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये विद्यार्थी-शिक्षक विद्यालय के विद्यार्थियों में विचारों की अभिव्यक्ति पूर्णरूप से विकसित नहीं कर पाते और ना ही हिंदी भाषा के प्रति उनकी रुचि जाग्रत कर पाते हैं।

लेखिका द्वारा शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय में अध्यापन कार्य करने के दौरान यह महसूस किया गया कि यदि हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना है, लोकप्रिय बनाना है तो सर्वप्रथम बी.एड. पाठ्यक्रम में बदलाव की नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों से जो विद्यार्थी-शिक्षक प्रशिक्षण लेकर निकलते हैं, वे देश के भावी शिक्षक होंगे और ये शिक्षक ही हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरव दिलाने का कार्य भली-भाँति कर सकते हैं।

वर्तमान में बी.एड. द्विवर्षीय पाठ्यक्रम लागू कर इसमें बदलाव किया गया है और उसमें कोर्स 4 के रूप में 'पाठ्यचर्या के सभी विषयों में भाषा' नामक प्रश्न पत्र के रूप में भाषा को स्थान दिया गया है। इस प्रश्न पत्र में भाषा के विविध पहलू एवं उनके शिक्षण के बारे में जानकारी दी गई है। यह जानकारी भावी शिक्षकों में भाषा के प्रति लगाव एवं प्रेम उत्पन्न करती है। साथ ही अन्य विषयों के शिक्षण को भी प्रभावी एवं सरल बनाती है, क्योंकि भाषा का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सभी विषयों से गहरा संबंध होता है।

शिक्षक शिक्षा में हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियाँ

कक्षा-कक्ष में शिक्षण के दौरान शिक्षक-प्रशिक्षकों के सामने कई तरह की चुनौतियाँ सामने आती हैं, जैसे—

- विद्यार्थी-शिक्षकों की वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ अधिक होना।
- शब्दों का उच्चारण सही तरह से नहीं कर पाना।
- व्याकरण के नियमों की पूरी जानकारी न होना।
- मानकीकृत भाषा का ज्ञान न होना।
- उच्चारण पर क्षेत्रीय भाषा का अत्यधिक प्रभाव होना।
- लेखन में अस्पष्टता का होना।
- अच्छी संदर्भ पुस्तकों का अभाव होना।
- हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रति अरुचि रखना।
- शिक्षण विधियों की समस्या।
- भाषा शिक्षण में प्रयुक्त सहायक सामग्री का अभाव।

विद्यार्थी-शिक्षक अपनी कमज़ोरियों के कारण हिंदी भाषा को सहज रूप से नहीं सीखते हैं। वे विद्यार्थी-शिक्षक जिन्होंने हिंदी भाषा शिक्षण ग्रहण किया है, वे तो हिंदी पढ़ने में रुचि लेते हैं, किन्तु जिन विद्यार्थी-शिक्षकों का विषय हिंदी भाषा शिक्षण नहीं होता, वे हिंदी पढ़ने में बिलकुल रुचि नहीं दिखाते हैं।